श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र
सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित

लब्धिसार

प्रथमोपशम सम्यक्त्व अधिकार

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

ग्रन्थ प्रारंभ करने से पहले इनका व्याख्यान आवश्यक है

नाम	• श्री लब्धिसार
कर्ता	• मूल कर्ता – सर्वज्ञ देव • उत्तर कर्ता – आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती
प्रमाण	• 6 अधिकार, 654 गाथाएँ
निमित्त	• राजा चामुण्डराय
हेतु	• साक्षात् – अज्ञान निवृत्ति • परम्परा – अभ्युदय, नि:श्रेयस की प्राप्ति
मंगल	• पञ्च परमेष्ठी को नमस्कार • सम्यक्त्व और चारित्र की लब्धि कहने की प्रतिज्ञा

www.jainkosh.org

जयन्त्यन्वहमर्हन्तः सिद्धाः सूर्युपदेशकाः ।
साधवो भव्यलोकस्य शरणोत्तम-मङ्गलम् ॥1॥
श्रीनागार्यतनूजात-शान्तिनाथोपरोधतः ।
वृत्तिर्भव्य-प्रबोधाय, लब्धिसारस्य कथ्यते ॥2॥

- अन्वयार्थ - जो (भव्यलोकस्य) भव्य जीवों के लिए (शरणोत्तममंगलम्) शरण, उत्तम और मंगलस्वरूप हैं, वे (अर्हन्तः, सिद्धाः, सूर्युपदेशकाः, साधवः) अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु (अन्वहम्) प्रतिदिन अर्थात् सदैव (जयन्ति) जयवन्त हो अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से विराजमान रहें ॥1॥
- अन्वयार्थ - (श्री नागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः) श्री नागार्यपुत्र शांतिनाथ के अनुरोधवश (भव्यप्रबोधाय) भव्य जीवों को उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए (लब्धिसारस्य) लब्धिसार ग्रन्थ की (वृत्तिः) टीका (कथ्यते) कही जाती है (लिखी जाती है ।) ॥2॥

www.JainKosh.org

लब्धिसार की रचना का आधार

षट्खंडागम के अन्तर्गत जीवस्थान खण्ड के चूलिका नामक अर्थाधिकार की 8वीं चूलिका

कषायप्राभृत के अन्त के 6 अर्थाधिकार

www.JainKosh.org

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

- अन्वयार्थः मैं (नेमिचन्द्राचार्य) (सिद्धे) सिद्धों को (जिणिंदचंदे) जिनेन्द्रचंद्र अर्थात् अरिहन्तों को (आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे) आचार्य, उपाध्याय व साधुओं को (वंदिय) नमस्कार करके
- (सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं) सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र लब्धि का (परूवेमो) वर्णन करता हूँ ॥1॥

www.JainKosh.org

मंगल

सिद्ध, अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं की स्तुति करके, प्रणाम करके ।

प्रतिज्ञा

सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र लब्धि का वर्णन करता हूं ।

www.JainKosh.org

सिद्ध

- कृतकृत्य और अपनी आत्मा को जिनने प्राप्त किया है

अरिहन्त

- जो जिनेंद्र; चंद्रमा की तरह सर्व लोक के प्रकाशक हैं एवं सब लोक को आनंददायी हैं।

आचार्य

- पंचाचारों का प्रवर्तन करने में तत्पर

उपाध्याय

- जिनके पास जाकर भव्य जीव विनय से अध्ययन करते हैं

साधु

- मोक्षमार्ग की साधना-आराधना करने वाले देशान्तर, कालान्तरवर्ती अथवा गुरुकुल के भेद से भिन्न

इन सभी के समूहों को वंदन करके लब्धिसार ग्रन्थ कहने की नेमिचन्द्र आचार्य ने प्रतिज्ञा की है ।

चदुगदिमिच्छो सण्णी, पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।
पढमुवसम्मं गेण्हदि, पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥2॥

- अन्वयार्थ : (चदुगदिमिच्छो) चारों गतियों का मिथ्यादृष्टि, (सण्णी) संज्ञी, (पुण्णो) पर्याप्त, (गब्भज) गर्भज, (विसुद्ध) मंद-कषायी, (सागारो) साकारोपयोगी जीव (पंचमवरलद्धिचरिमम्हि) पाँचवी करणलब्धि के उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम के अंतिम समय में (पढमुवसम्मं) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को (गेण्हदि) ग्रहण करता है ॥2॥

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति की सामान्य पात्रता

चतुर्गति का मिथ्यादृष्टि जीव	चारों ही गति का कोई भी मिथ्यादृष्टि जीव ।
संज्ञी	संज्ञी (मन सहित) जीव होना चाहिए, असंज्ञी नहीं ।
पूर्ण	पर्याप्तक होना चाहिए, अपर्याप्तक नहीं ।
गर्भज	मनुष्य, तिर्यंचगति में गर्भज जीव ही होना चाहिए, सम्मूर्छन नहीं ।
विशुद्ध	क्षयोपशम लब्धि के प्रथम समय से प्रत्येक समय में अनंतगुणी विशुद्धि से बढ़ता हुआ होना चाहिए ।
साकार	ज्ञानोपयोग वाला होना चाहिए ।

ऐसा उपर्युक्त चतुर्गति का मिथ्यादृष्टि जीव पाँचवीं करणलब्धि के अनिवृत्तिकरण के अंत समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

साकार का अर्थ ऐसा भी है – 'जागृत होना चाहिए । स्त्यानगृद्धि आदि 3 निद्राओं से रहित होना चाहिए ।'

प्रश्न: क्या औपपादिक जन्म वाले देव, नारकियों को प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता?

उत्तर: देव और नारकियों का औपपादिक जन्म ही होता है।

यहाँ 'गर्भज' कहकर मनुष्य, तिर्यंचों का ग्रहण किया है क्योंकि उनमें सम्मूर्छन जीवों का निषेध करना है ।

इससे औपपादिक का निषेध नहीं किया है ।

अतः औपपादिक जन्म वालों को प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है।

किस पद से किसका निषेध होता है?

पद	प्रतिषेध	हेतु
मिथ्यादृष्टि	सासादन, मिश्र	प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप परिणमन होने की शक्ति का अभाव है ।
	वेदक-सम्यग्दृष्टि	इस जीव ने पहले ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है।
संज्ञी	असंज्ञी	मन के बिना विशिष्ट ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती है ।
पर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्तक जीवों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने का विरोध है ।
पंचेन्द्रिय	एकेन्द्रिय से चतुरिंद्रिय-पर्यंत जीव	सम्यक्त्व ग्रहण करने योग्य परिणाम एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में नहीं हो सकते हैं ।
गर्भज	सम्मूर्च्छन	सम्मूर्च्छन जीवों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता नहीं है।
विशुद्ध	संक्लेशसहित	विशुद्धि के बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता ।
साकार	अनाकार	अनाकार उपयोग में गुण-दोषों का विचार नहीं होता है।

उपशम सम्यक्त्व

दर्शन मोहनीय की प्रकृतियों का

अंतरकरण करके

जो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व प्राप्त होता है,

उसे उपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

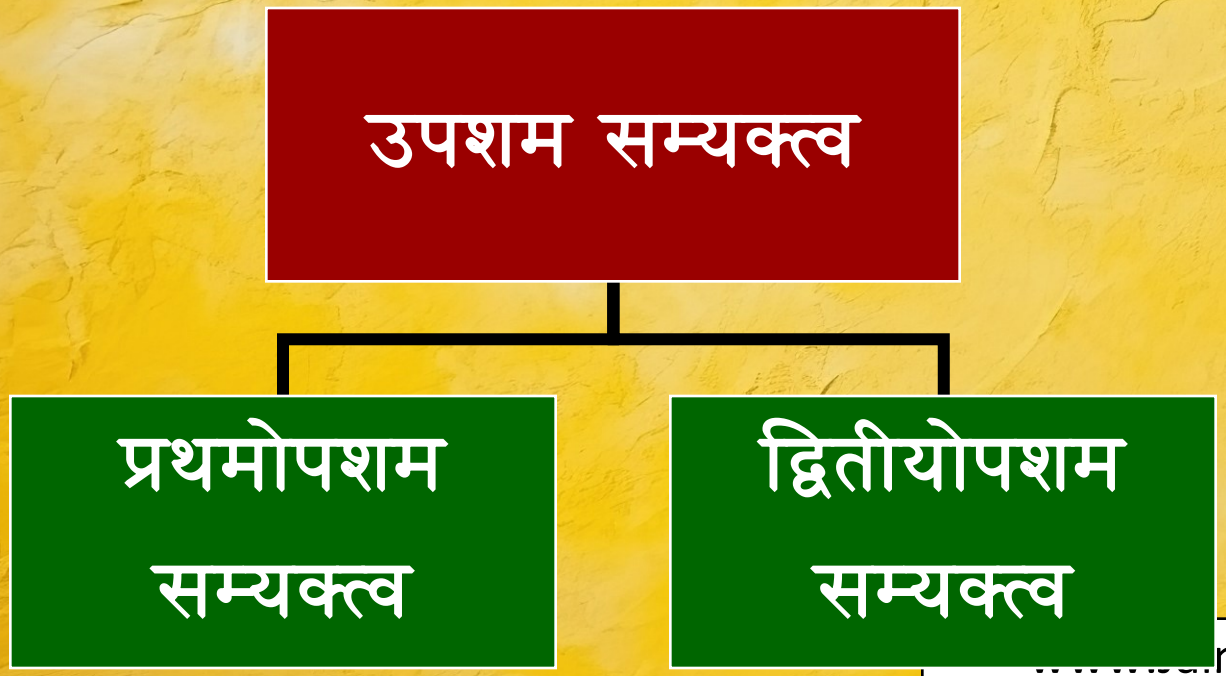

प्रथमोपशम सम्यक्त्व

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति – इन सात प्रकृतियों के अथवा

सम्यक्त्व के बिना छह प्रकृतियों के अथवा

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के बिना शेष पाँच प्रकृतियों के

उपशम होने से मिथ्यात्व गुणस्थान में से चौथे, पाँचवें, सातवें गुणस्थान में जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

www.jainkosh.org

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व

उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख अवस्था में

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है

उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

www.JainKosh.org

अनादि मिथ्यादृष्टि

जिस मिथ्यादृष्टि जीव ने अभी तक आत्मानुभव करके सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है वह अनादि मिथ्यादृष्टि है ।

सादि मिथ्यादृष्टि

जिसने सम्यक्त्व को प्राप्त किया, पश्चात् पुन: मिथ्यात्व परिणामों को प्राप्त हो गया, उसे सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

जिसके मिथ्यात्व का प्रारंभ होता है, वह सादि मिथ्यादृष्टि है ।

अनादि जैसा सादि मिथ्यादृष्टि

जिस सादि मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व में आए हुए पल्य का असंख्यात भाग प्रमाण काल बीत गया है, वह अनादि मिथ्यादृष्टि जैसा है । क्योंकि अब उसे पुन: प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करना होगा ।

www.JainKosh.org

गतियों में सम्यक्त्व के बाह्य निमित्त

देव, नारकी, सभी द्वीप और समुद्रों में रहने वाले गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और ढाई द्वीप व दोनों समुद्रों मे रहने वाले गर्भज पर्याप्त मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते हैं।

गति		सम्यग्दर्शन के निमित्तकारण
मनुष्य गति		1. जाति-स्मरण 2. देवदर्शन 3. धर्मश्रवण
तिर्यंच गति		
नरक गति	1 से 3 नरकपर्यंत	1. वेदनानुभव 2. जातिस्मरण 3. धर्मश्रवण
	4 से 7 नरकपर्यंत	1. वेदनानुभव 2. जाति-स्मरण

देव गति में सम्यक्त्व के बाह्य निमित्त

देव	सम्यग्दर्शन के निमित्तकारण
भवनत्रिक	1. जाति-स्मरण 2. धर्मश्रवण 3. देवर्द्धिदर्शन 4. जिनकल्याणकदर्शन
1 से 12 वें कल्प	1. जाति-स्मरण 2. धर्मश्रवण 3. देवर्द्धिदर्शन 4. जिनकल्याणकदर्शन
13 वें 16 वें कल्प	1. जाति-स्मरण 2. धर्मश्रवण 3. जिनकल्याणकदर्शन
9 ग्रैवेयक	1. जाति-स्मरण 2. धर्मश्रवण
अनुदिश और अनुत्तर	यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं ।

www.JainKosh.org

खयउवसमिय-विसोही, देसण-पाउग्ग-करणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा, करणं सम्मत्तचारित्ते ॥3॥

- अन्वयार्थ - (खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य) क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण – ये पाँच लब्धियाँ हैं ।
- उनमें से (चत्तारि वि) प्रथम चार लब्धियाँ (सामण्णा) सामान्य हैं।
- (करणं) करणलब्धि मात्र (सम्मत्तचारित्ते) सम्यक्त्व व चारित्र प्राप्त होते समय होती है ॥3॥

www.JainKosh.org

5 लब्धियाँ

1. क्षयोपशम लब्धि

2. विशुद्धि लब्धि

3. देशना लब्धि

4. प्रायोग्य लब्धि

5. करण लब्धि

इनमें से प्रथम चार लब्धियाँ सामान्य से भव्य और अभव्य दोनों को ही होती हैं ।

परंतु करणलब्धि केवल भव्य जीवों को सम्यक्त्व और चारित्र के प्राप्त होते समय ही होती है ।

www.JainKosh.org

कम्ममलपडलसत्ती, पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा, तदा खओवसमलद्धी दु ॥4॥

- अन्वयार्थ— (जदा) जब (कम्ममलपडलसत्ती) अप्रशस्त कर्मसमूह की शक्ति (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (अणंतगुणविहीणकमा) क्रम से अनन्त गुणहीन (होदूण) होकर (उदीरदि) उदय में आती है (तदा) तब (खओवसमलद्धी दु) क्षयोपशम लब्धि होती है ॥4॥

क्षयोपशम लब्धि

अप्रशस्त कर्मसमूह की शक्ति याने घाती-अघाती दोनों कर्मों की

उदय आती हुई सारी पाप प्रकृतियों का अनुभाग

प्रत्येक समय में

अनंत-अनंत गुणा हीन होकर

उदय में आता है,

उस समय की जीव की विशिष्ट दशा को

क्षयोपशम लब्धि कहते हैं ।

यह लब्धि अंतर्मुहूर्त काल तक ही होती है।

क्षयोपशम और क्षयोपशम लब्धि में अंतर

क्षयोपशम	क्षयोपशम लब्धि
1) क्षयोपशम मात्र घातिया कर्म की देशघाती प्रकृतियों में पाया जाता है ।	क्षयोपशम लब्धि घातिया के सर्वघाती, देशघाती एवं अघातिया के भी अप्रशस्त कर्मों में पायी जाती है ।
2) क्षयोपशम रहने पर देशघाती का जितना अनुभाग है, वह उदय में आता है ।	क्षयोपशम लब्धि में प्रत्येक समय में अनंत गुणा घटता हुआ अनुभाग उदय में आता है ।
3) कर्मों का क्षयोपशम यथायोग्य अनादि से लगातार पाया जाता है ।	क्षयोपशम लब्धि संज्ञी पंचेन्द्रिय होने पर ही अंतर्मुहूर्त काल के लिए होती है ।
4) क्षयोपशम निद्रा में, विग्रहगति में, सर्वत्र, सर्व दशाओं में पाया जाता है ।	क्षयोपशम लब्धि जागृत पर्याप्तक दशा में ही पायी जाती है ।
5) मिथ्यात्व आदि सर्वघाती प्रकृतियों का क्षयोपशम नहीं होता ।	परंतु मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों की क्षयोपशम लब्धि पायी जाती है ।

आदिमलद्धिभवो जो, भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं, बंधणजोगो विसोहिलद्धी सो ॥5॥

- अन्वयार्थ— (आदिमलद्धिभवो) प्रथम क्षयोपशम-लब्धि के उत्पन्न होने पर (सादपहुदीणं सत्थाणं पयडीणं) सातादिक प्रशस्त प्रकृतियों के (बंधणजोगो) बंध के योग्य (जो) जो (जीवस्स) जीव का (भावो) परिणाम है (सो) वह (विसोहिलद्धी) विशुद्धि लब्धि है ॥5॥

विशुद्धि लब्धि

प्रथम क्षयोपशम लब्धि के होने पर

मिथ्यादृष्टि जीव के

साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध-योग्य

जो धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं,

उसे विशुद्धि लब्धि कहते हैं ।

www.JainKosh.org

क्षयोपशम लब्धि एवं विशुद्धि लब्धि में अंतर

क्षयोपशम लब्धि में अप्रशस्त कर्मों की प्रत्येक समय में अनंत गुणा हीन शक्ति होना अपेक्षित है ।

विशुद्धि लब्धि में साता आदि शुभ प्रकृतियों के बंध-योग्य ही विशुद्धि होती है, असाता आदि के योग्य संक्लेश परिणाम नहीं होते ।

www.JainKosh.org

छद्दव्वणवपयत्थो-पदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारण-लाहो वा तदियलद्धी दु ॥6॥

- अन्वयार्थ— (जो) जो (छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयर-सूरिपहुदिलाहो) छह द्रव्य, नौ पदार्थों के उपदेश करने वाले आचार्यादिकों का लाभ (वा) अथवा (देसिदपदत्थ-धारणलाहो) उपदेशित पदार्थ के धारणा की प्राप्ति होना (तदियलद्धी) वह तीसरी देशना लब्धि है ॥6॥

देशना लब्धि

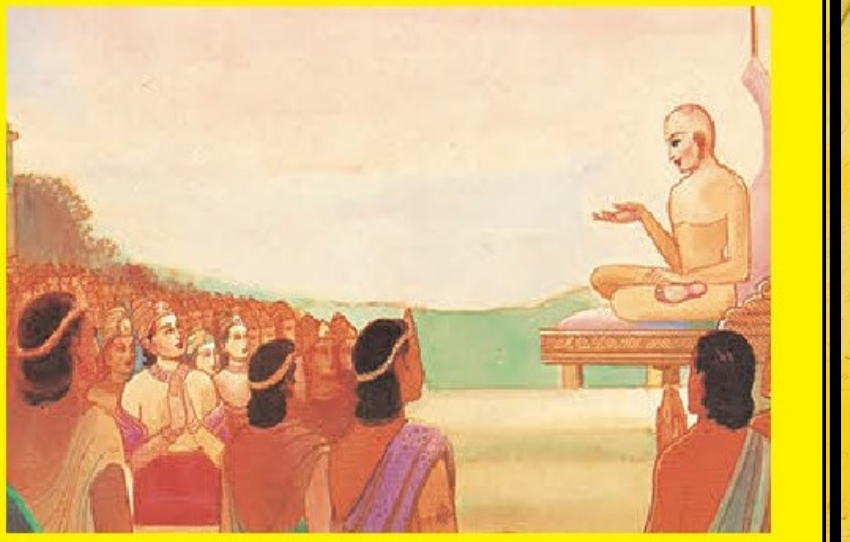

6 द्रव्य, 5 अस्तिकाय, 7 तत्त्व, 9 पदार्थ के

उपदेशदाता आचार्य आदिक का लाभ तथा

चिर-अतीत काल में उपदेशित पदार्थों की धारणा होना

देशना लब्धि कहलाती है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न — नरक में देशना लब्धि के बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर—नारकादि भवों में पूर्व भव में शास्त्र के द्वारा धारण किये तत्त्वार्थ के संस्कार के बल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है ।

www.JainKosh.org

अंतोकोडाकोडी, विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा, भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥7॥

- अन्वयार्थ— (जं) जो (ठिदिरसाण) स्थिति व अनुभाग को (अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे करणं) अंत:कोड़ाकोड़ी व द्विस्थानीय करती है (पाउग्गलद्धिणामा) वह प्रायोग्यलब्धि है अर्थात् कर्मों की स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी करती है और चतु:स्थानगत अनुभाग को द्विस्थानरूप करती है ।
- (भव्वाभव्वेसु) यह लब्धि भव्य व अभव्य जीवों को (सामण्णा) सामान्यरूप से होती है ॥7॥

www.JainKosh.org

प्रायोग्य लब्धि

जो कर्मों के स्थिति-सत्त्व को अंत:कोड़ाकोड़ी करती है एवं

कर्मों के अनुभाग-सत्त्व को द्विस्थानीय करती है,

उसे प्रायोग्य लब्धि कहते हैं ।

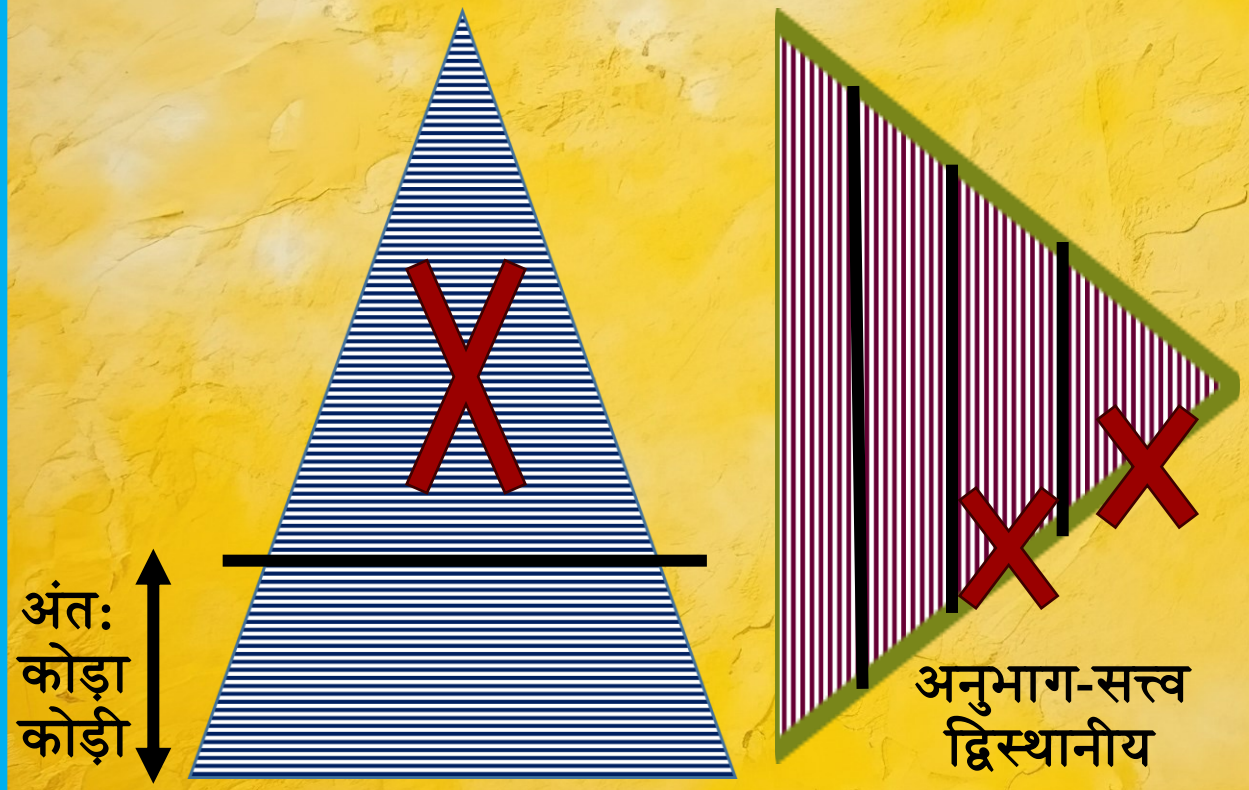

अंत:कोड़ाकोड़ी

एक करोड़ से ऊपर, एक करोड़ × एक करोड़ के नीचे जो संख्या है,

उसे अंत:कोड़ाकोड़ी कहते हैं ।

एक करोड़ < अंत:कोड़ाकोड़ी < एक कोड़ाकोड़ी

इसे अंत:कोटाकोटी भी कहते हैं ।

www.JainKosh.org

प्रायोग्यता लब्धि में एक स्थितिकांडकघात

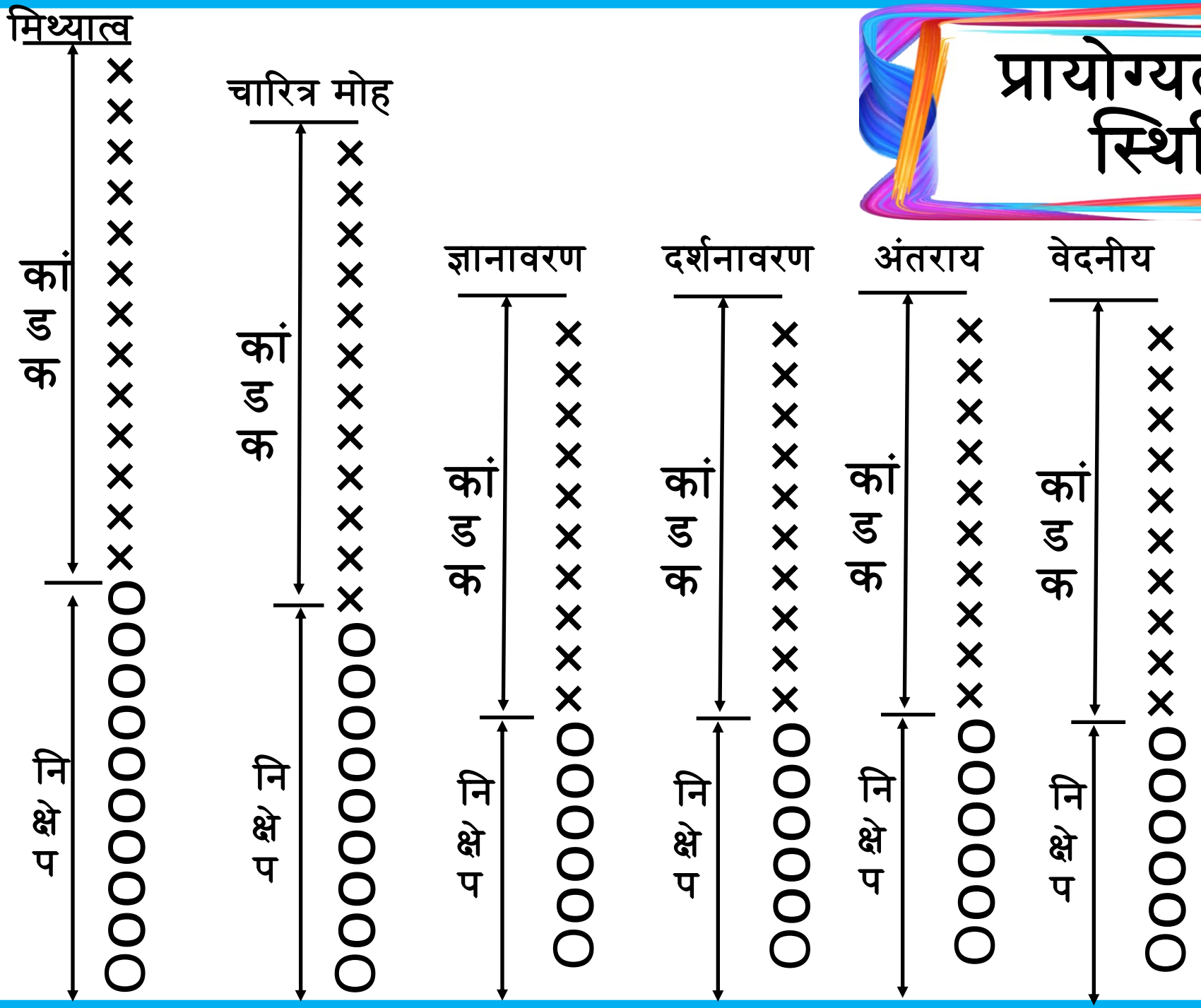

विशेष

प्रायोग्यता लब्धि के पूर्व, कर्म की सत्ता सामान्यतया कोड़ाकोड़ी सागरों में रहती है ।

प्रायोग्यता लब्धि द्वारा आयु को छोड़कर शेष 7 कर्मों के स्थिति-सत्त्व को

एक कांडक द्वारा घात करके अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण मात्र शेष रखकर

उस कांडक के द्रव्य को शेष रही स्थिति में देता है ।

इससे स्थिति-सत्त्व मात्र अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाता है ।

बंध

शरीर नामकर्म के उदय से और योग के निमित्त से

कार्मण वर्गणारूप से आये हुए पुद्गल स्कंध

मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर

आत्मा के प्रदेशों में परस्पर प्रवेश करते हैं

उसे बंध कहते हैं ।

बन्ध के प्रकार

प्रकृति बन्ध	स्थिति बन्ध	अनुभाग बन्ध	प्रदेश बन्ध
मूल-उत्तर प्रकृतियों का यथायोग्य जीव से संबन्ध होना	बंधी प्रकृतियों का जीव से संबन्धरूप रहने का काल	प्रकृतियों में फल देने की शक्ति	प्रकृतिरूप परिणत पुद्गल परमाणुओं का प्रमाण

जैसे —

आम की प्रकृति	आम की स्थिति	आम का अनुभाग	आम के प्रदेश
मीठा	5 - 7 दिन	कितना अधिक मीठा, स्वादिष्ट	सैकड़ों स्कंध या अनेकों Slices

वैसे —

मतिज्ञानावरण की प्रकृति	मतिज्ञानावरण की स्थिति	मतिज्ञानावरण का अनुभाग	मतिज्ञानावरण के प्रदेश
मतिज्ञान को आवृत्त करने की है ।	अधिकतम 30 कोड़ाकोड़ी सागर	लता, दारु, अस्थि, शैल रूप	मतिज्ञानावरणरूप परिणत कर्म-परमाणुओं की संख्या

विशेष

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश – ये चारों; कर्म के सत्त्व में होते हैं, बंध में होते हैं, उदय में होते हैं ।

यहाँ प्रायोग्य लब्धि की उपलब्धि के समय कर्म की स्थिति-सत्त्व के बारे में बताया है ।

www.JainKosh.org

स्पर्धक

वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं ।

स्थिति की अपेक्षा निषेक संज्ञा होती है और अनुभाग को बताने के लिए स्पर्धक संज्ञा है ।

www.JainKosh.org

घातिया कर्मों का अनुभाग

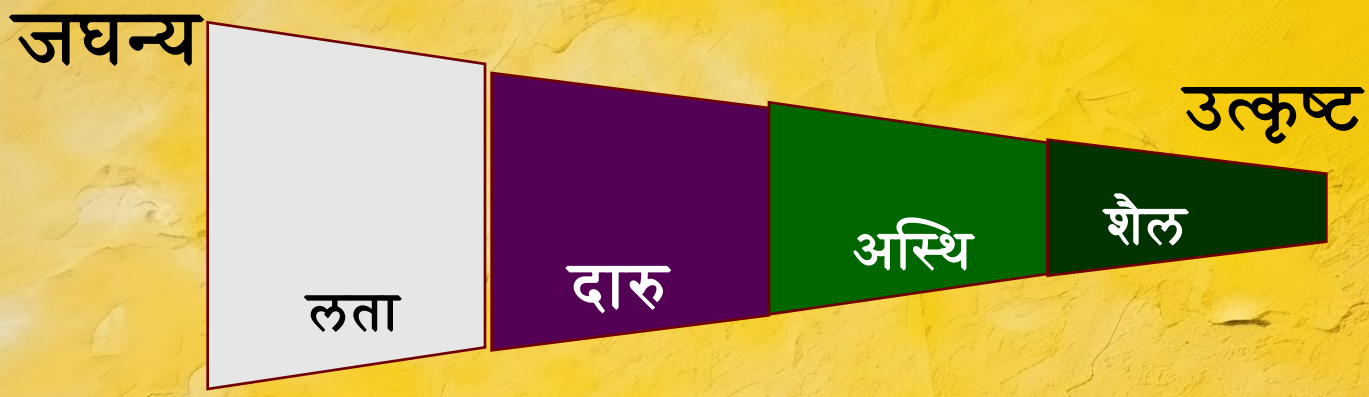

जैसे इनमें उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कठोरता पायी जाती है, उसी प्रकार घातिया कर्मों के अनुभाग अर्थात् फल देने की शक्ति इन-इन स्पर्धकों में अधिक-अधिक पायी जाती है।

लता

- बेल

दारु

- काष्ठ, लकड़ी

अस्थि

- हड्डी

शैल

- पाषाण, पर्वत

घातिया कर्मों की अनुभाग-शक्ति दो प्रकार की है-

सर्वघाती

- आत्मा के गुण का पूर्णरूप से घात करने वाला ।

सारे लतारूप स्पर्धक देशघाती होते हैं ।

देशघाती

- आत्मा के गुण का एकदेशरूप से घात करने वाला ।

दारु के अनंतवे भाग स्पर्धक देशघाती होते हैं ।

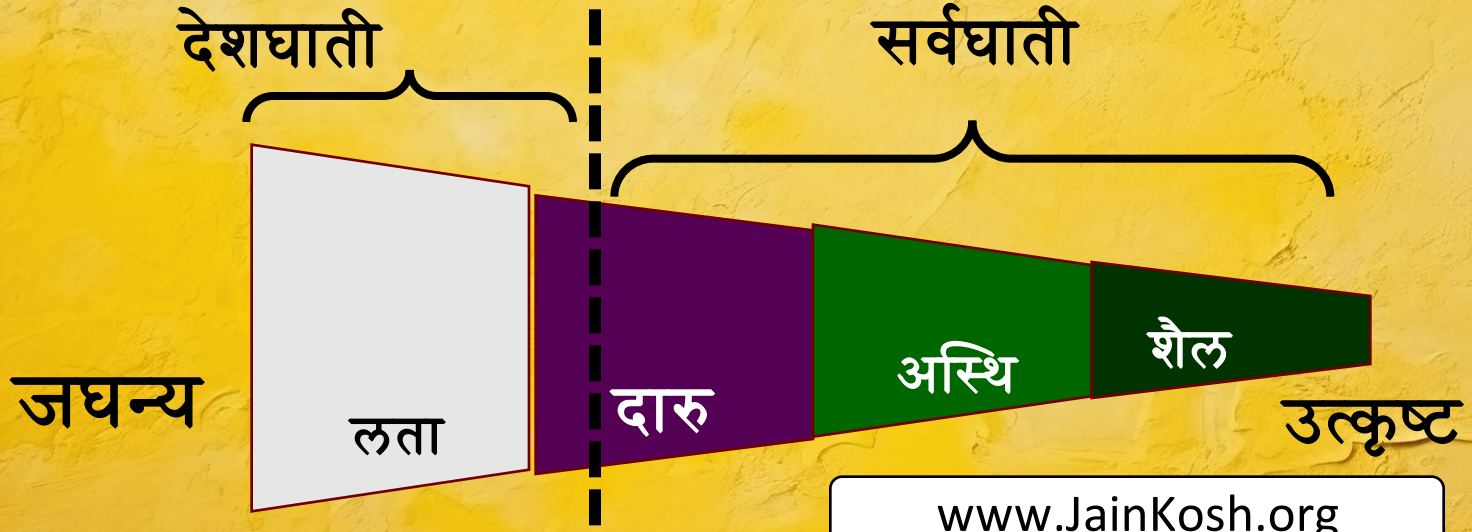

दारु के अनंत बहुभाग स्पर्धक सर्वघाती होते हैं ।

अस्थि और शैल स्पर्धक सर्वघाती होते हैं ।

www.JainKosh.org

अघातिया कर्मों का अनुभाग

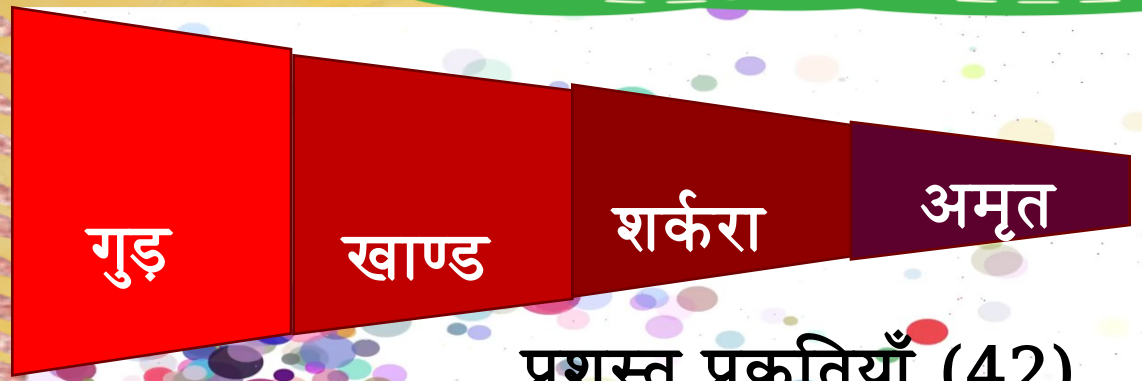

प्रशस्त प्रकृतियाँ (42)

जैसे गुड़, खाण्ड आदि अधिक-अधिक मिष्ट हैं, वैसे इन प्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक उत्तरोत्तर मिष्टरूप हैं । अर्थात् अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं ।

अप्रशस्त प्रकृतियाँ (37)

जैसे निंब, कांजीर आदि उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दु:खद हैं, वैसे इन अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दु:ख के कारण हैं ।

www.JainKosh.org

यहाँ प्रायोग्य लब्धि के द्वारा जो घातिया कर्म का चतु:स्थानीय अनुभाग है,

उसके अनंत बहुभाग अनुभाग का घात करके द्विस्थानीय मात्र शेष रखा जाता है ।

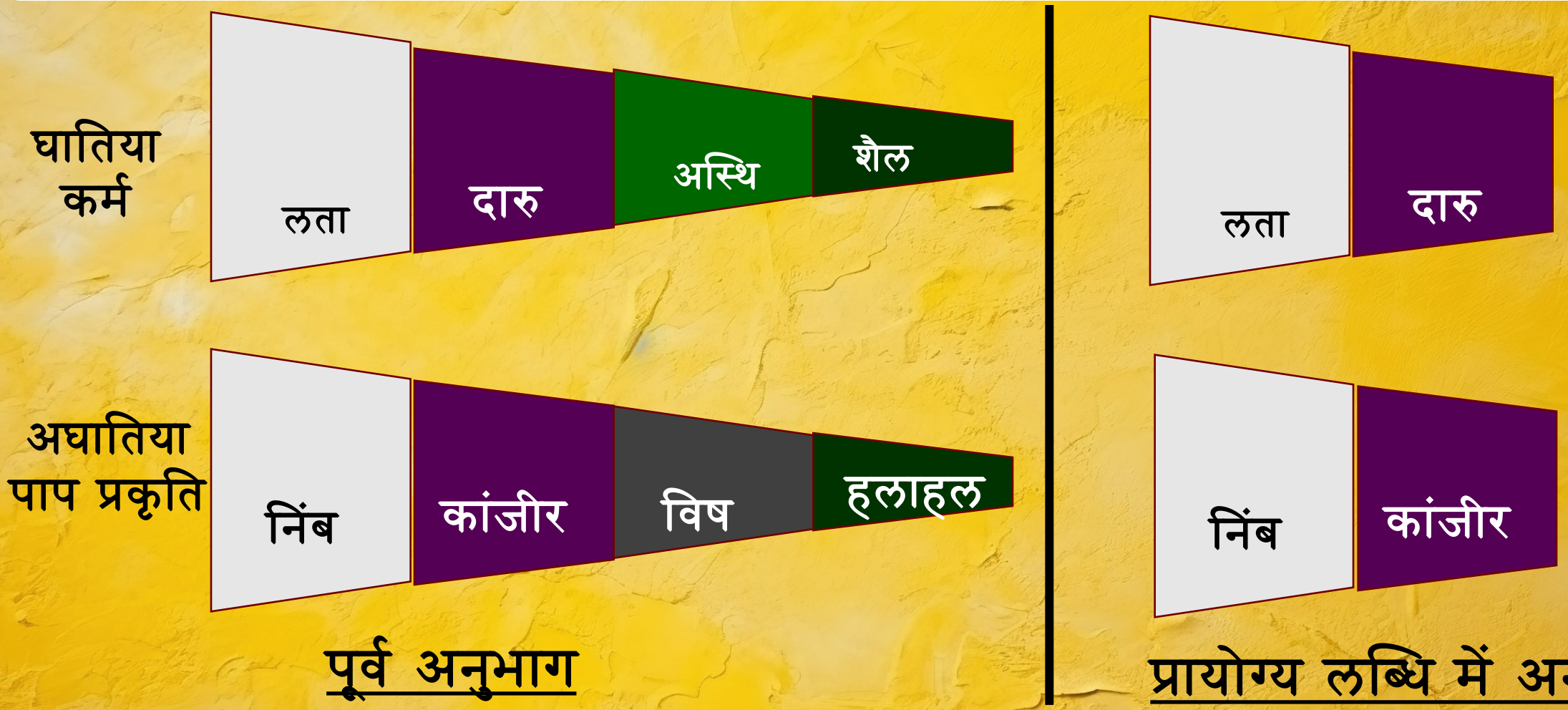

विशेष

अघातिया कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियों में विशुद्ध परिणामों के द्वारा अनुभाग का घात नहीं होता है।

यह प्रायोग्य लब्धि भव्य और अभव्य दोनों को होती है ।

प्रारंभ की चार लब्धियाँ सामान्य हैं, पाँचवीं करण लब्धि विशेष है।

www.JainKosh.org

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे, जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुव-समसम्मं मिच्छजीवो हु ॥8॥

- अन्वयार्थ— (जेट्ठवरट्ठिदिबंधे) उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबंध होने पर (य) और (जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते) उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति, अनुभाग व प्रदेश सत्त्व होने पर (हु) निश्चय से (मिच्छजीवो) मिथ्यादृष्टि जीव (पढमुवसम-सम्मं) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को (ण य पडिवज्जदि) प्राप्त नहीं होता है ॥8॥

www.JainKosh.org

कौन प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता ?

- उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति बंध होने पर
- उत्कृष्ट या जघन्य स्थिति-सत्त्व होने पर
- उत्कृष्ट या जघन्य अनुभाग-सत्त्व होने पर
- उत्कृष्ट या जघन्य प्रदेश-सत्त्व होने पर
- मिथ्यादृष्टि जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है ।

पद	स्वामी
उत्कृष्ट स्थितिबंध	आयु बिना 7 कर्मों का उत्कृष्ट बंध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि को होता है।
जघन्य स्थितिबंध	मिथ्यात्व गुणस्थान में जघन्य स्थितिबंध एकेंद्रिय जीव को होता है। एकेंद्रिय जीव को सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता नहीं है ।
उत्कृष्ट स्थिति-सत्त्व	उत्कृष्ट स्थितिबंध जिसने किया है, ऐसा उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय संज्ञी
उत्कृष्ट अनुभाग-सत्त्व	उत्कृष्ट अनुभागबंध जिसने किया है, ऐसा संक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि जीव, जब तक अनुभाग का घात नहीं करता ।
उत्कृष्ट प्रदेश सत्त्व	गुणित कर्मांशिक सातवें नरक का अंतिम समयवर्ती नारकी जीव।

ऐसे संक्लेश परिणामी जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती ।
इस बंध और सत्त्व को कम करने पर वह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का पात्र हो सकता है ।

जघन्य स्थिति-सत्त्व

- मिथ्यादृष्टि जीवों में जघन्य स्थिति-सत्त्व एकेंद्रिय जीवों को होता है ।

जघन्य अनुभाग-सत्त्व

- मिथ्यादृष्टि जीवों में जघन्य अनुभाग-सत्त्व एकेंद्रिय जीवों को द्विस्थान प्रमाण होता है ।

जघन्य प्रदेश-सत्त्व

- मिथ्यादृष्टि जीवों में जघन्य प्रदेश-सत्त्व एकेंद्रिय जीवों में पाया जाता है।

एकेंद्रिय जीव को सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता ही नहीं है ।

इसलिये जघन्य सत्त्व वाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के अयोग्य है ।

www.JainKosh.org

विशेष

सामान्य रूप से जघन्य स्थितिसत्त्व, अनुभाग सत्त्व क्षपक श्रेणी पर स्थित जीव के होता है ।

वह जीव पहले से ही क्षायिक सम्यक्त्वी है । उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं है ।

इसलिए अंत:कोटाकोटी प्रमाण स्थिति-सत्त्व तथा द्विस्थानीय अनुभाग-सत्त्व होने पर ही जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के योग्य होता है ।

www.JainKosh.org

सम्मत्तहिमुहमिच्छो, विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ।
अंतोकोडाकोडिं, सत्तण्हं बंधणं कुणइ ॥9॥

- अन्वयार्थ— (सम्मत्तहिमुहमिच्छो) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव (हु) निश्चय से (विसोहिवड्ढीहि) विशुद्धि की वृद्धि से (वड्ढमाणो) बढ़ने वाला अर्थात् वर्धमान विशुद्धि वाला (सत्तण्हं) सात कर्मों का (अंतोकोडाकोडिं) अंत:कोटाकोटि सागरप्रमाण (बंधण) स्थितिबंध (कुणइ) करता है ॥9॥

www.JainKosh.org

प्रायोग्य लब्धि में स्थितिबंध का प्रमाण

प्रायोग्य लब्धि के प्रथम समय में

7 कर्मों का पूर्व में जो स्थितिबंध हो रहा था,

उससे संख्यातगुणा हीन,

अंत:कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिबंध होता है ।

www.JainKosh.org

तत्तो उदधिसदस्स य, पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ।
बंधम्मि पयडिबंधुच्छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥10॥

- अन्वयार्थ— (तत्तो) उसके अनन्तर अर्थात् अन्त:कोटीकोटी मात्र स्थितिबंध प्रारम्भ करने के अनन्तर (उदधिसदस्स य पुधत्तमेत्तं) 100 सागर पृथक्त्वमात्र (पुणो पुणोदरिय) पुन:-पुन: स्थितिबंधापसरण जाकर (बंधम्मि) बंध में (चोत्तीसा पयडिबंधुच्छेदपदा) प्रकृतिबंध के चौंतीस व्युच्छित्ति स्थान (होंति) होते हैं ॥10॥

www.Jainkosh.org

स्थिति बंधापसरण

पूर्व स्थितिबंध से

घटाकर स्थितिबंध करने को

स्थिति बंधापसरण कहते हैं ।

www.JainKosh.org

स्थिति बंधापसरण

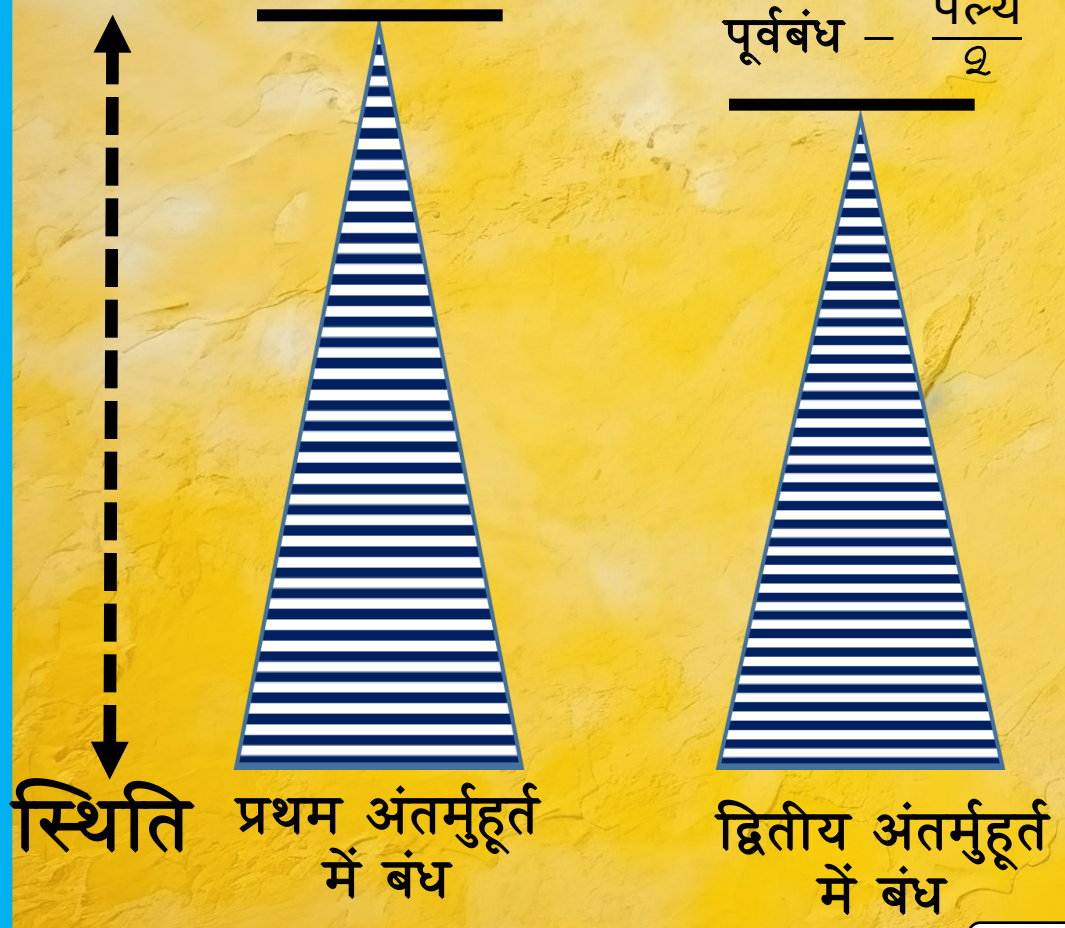

एक बार में $\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$ प्रमाण स्थितिबंध घटाता है ।

एक स्थितिबंधापसरण में अंतर्मुहूर्त काल लगता है ।

उस अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत समान स्थितिबंध होता है ।

www.JainKosh.org

प्रकृति बंधापसरण

ऐसे संख्यातों अपसरण होने पर बंध में 1 पल्य घटता है । फिर ऐसे संख्यातों अपसरण होने पर बंध में 1 सागर घटता है । ऐसे घटते हुए जब 700-800 सागर बंध में कम होते हैं, तब एक प्रकृति का बंधापसरण होता है ।

ऐसे पुन: 700-800 सागर बंध में कम होते हैं, तब दूसरी प्रकृति या प्रकृति-समूह का बंधापसरण होता है ।

ऐसे कुल 34 प्रकृति बंधापसरण प्रायोग्य लब्धि में क्रमश: होते हैं ।

प्रकृति बंध का अपसरण होना, घटना – प्रकृतिबंधापसरण कहलाता है ।

दृष्टांत - प्रथम प्रकृति बंधापसरण

प्रथम स्थितिबंध = 1,00,000 वर्ष प्रमाण

$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$ = 5 वर्ष

पल्य = 25 वर्ष

सागर = 100 वर्ष

पृथक्त्व सागर = 700 वर्ष

अंतर्मुहूर्त काल = 4 समय

समय	स्थितिबंध	बंधापसरण
1	100000 वर्ष	
2	100000 वर्ष	
3	100000 वर्ष	
4	100000 वर्ष	1 स्थिति बंधापसरण
5	99,995 वर्ष	
6	99,995 वर्ष	
7	99,995 वर्ष	
8	99,995 वर्ष	2 स्थिति बंधापसरण
9	99,990 वर्ष	
10-12	99,995 वर्ष	3 स्थिति बंधापसरण
13-16	99,985 वर्ष	4 स्थिति बंधापसरण
17-20	99,980 वर्ष	5 स्थिति बंधापसरण
21	99,975 वर्ष	1 पल्य घटकर बंध
0		
0		
81	99,900 वर्ष	1 सागर घटकर बंध
0		
0		
0		
161	99,800 वर्ष	2 सागर घटकर बंध
0		
0		
0		
561	99,300 वर्ष	पृथक्त्व सागर घटकर बंध

www.Jainkosh.org

यहाँ प्रथम प्रकृति बंधापसरण होता है ।

ऐसे प्रत्येक पृथक्त्व सागर घटने पर प्रकृति बंधापसरण होता है ।

जिस प्रकृति का बंधापसरण हुआ है, वह प्रकृति आगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति तक बंध-योग्य नहीं रहती । उसके पश्चात् यथायोग्य बंध-योग्य हो जाती है ।

यदि करण लब्धि को प्राप्त नहीं करता है, तब भी ये प्रकृतियाँ पुनः बंध-योग्य हो जाती हैं ।

www.JainKosh.org

स्थिति-बंधापसरण

उदाहरण- मानाकि प्रथम स्थिति-बंध = 100000 वर्ष; 1 स्थिति-बंधापसरण = 5 वर्ष

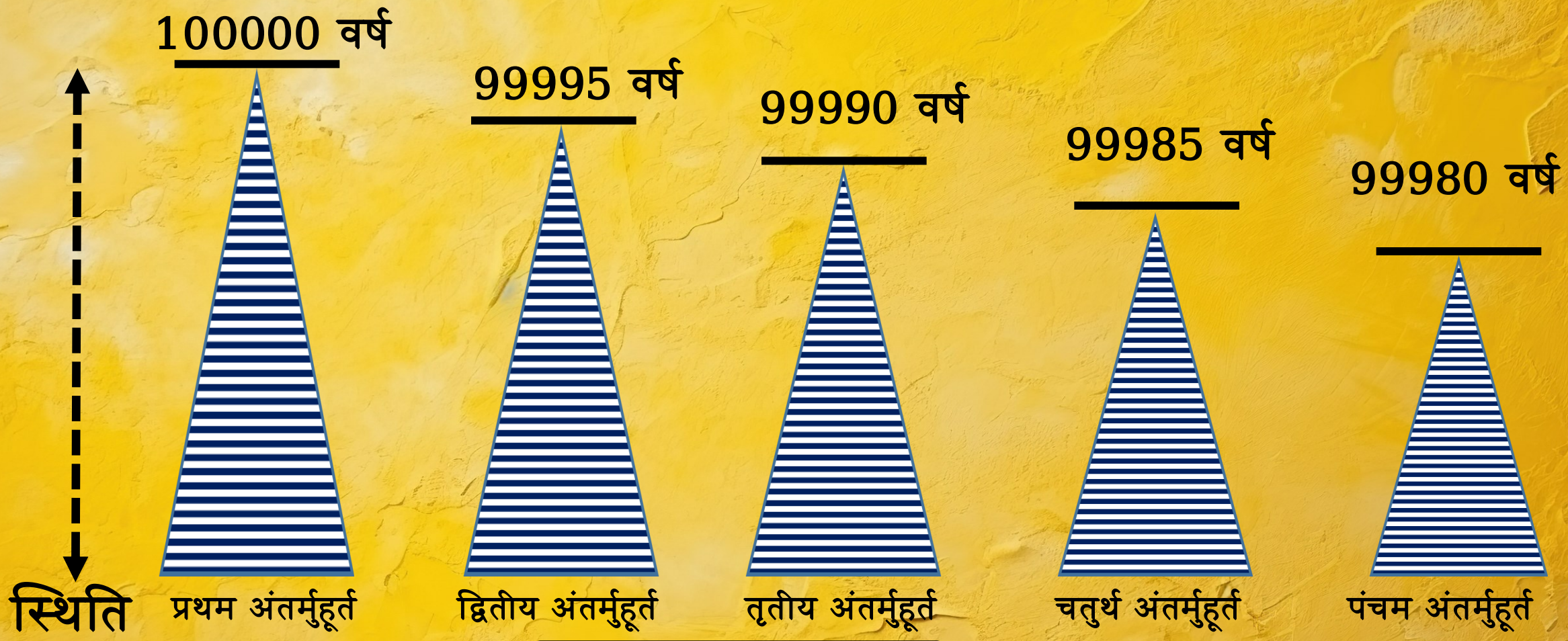

www.JainKosh.org

आउं पडि णिरयदुगे, सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं ।
बादरजुद दोण्णि पदे, अपुण्णजुद वितिचसण्णिसण्णीसु ॥11॥

- अन्वयार्थ :- (आउं पडि) प्रत्येक आयु, (णिरयदुगे) नरकद्विक, (सुहुमतिये) सूक्ष्मत्रय, (सुहुमदोण्णि पत्तेयं) सूक्ष्मादि दो और प्रत्येक, (बादरजुद दोण्णिपदे) बादरयुक्त पूर्वोक्त दो स्थान, (अपुण्णजुद वि-ति-च-सण्णि-सण्णीसु) अपर्याप्तयुक्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय (ऐसे क्रमशः 14 स्थान हैं ।) ॥11॥

www.JainKosh.org

34 प्रकृति बंधापसरण

बंध व्युच्छित्ति - विवक्षित स्थान के अंतिम समय तक बंध-योग्य होकर उसके अनंतर समय में बंध न होना, उसे बंध-व्युच्छित्ति कहते हैं ।

प्रायोग्य लब्धि से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति तक आयु का बंध नहीं होता है । इसलिए प्रारंभ में आयु बंध की व्युच्छित्ति कही है ।

अपसरण क्र.	प्रकृति
1	नरकायु
2	तिर्यंचायु
3	मनुष्यायु
4	देवायु
5	नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी
6	सूक्ष्म – अपर्याप्त – साधारण
7	सूक्ष्म – अपर्याप्त – प्रत्येक
8	बादर – अपर्याप्त – साधारण
9	बादर – अपर्याप्त – प्रत्येक
10	द्वीन्द्रिय जाति – अपर्याप्त
11	त्रीन्द्रिय जाति – अपर्याप्त
12	चतुरिन्द्रिय जाति – अपर्याप्त
13	असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति – अपर्याप्त
14	संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति – अपर्याप्त

www.JainKosh.org

संयुक्तरूप प्रकृति बंधापसरण

जो छठे आदि स्थान में प्रकृतियाँ कही हैं, वे संयुक्तरूप से ग्रहण करनी है ।

याने सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण की व्युच्छित्ति कहने पर सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येक — इन तीन प्रकृतियों की व्युच्छित्ति नहीं हुई हैं, वरन् इन तीनों के समुदायरूप बंध की व्युच्छित्ति हुई है ।

इन तीनों का सामूहिक बंध अब नहीं होगा, परंतु अन्य प्रकृतियों के साथ हो सकता है ।

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि, पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे ।
एइंदिय आदावं, थावरणामं च मिलिदव्वं ॥12॥

- अन्वयार्थ :- (अट्ठ अपुण्णपदेसु वि) पूर्वोक्त आठ अपर्याप्त स्थानों में (पुण्णेण जुदेसु) पर्याप्त जोड़ने पर (आगे के आठ स्थान होते हैं ।)
- (तेसु तुरियपदे) उसमें से चौथे स्थान में (एइंदिय आदावं थावरणाम च) एकेन्द्रिय, आतप व स्थावर नामकर्म (मिलिदव्वं) मिलाना चाहिए अर्थात् पूर्वोक्त छठे स्थान से तेरहवें स्थान पर्यन्त आठ स्थानों में अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त जोड़ें एवं नौवें स्थान में एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृति अधिक जोड़ना चाहिए ॥12॥

www.JainKosh.org

34 प्रकृति बंधापसरण

क्र.	प्रकृति
15	सूक्ष्म – पर्याप्त – साधारण
16	सूक्ष्म – पर्याप्त – प्रत्येक
17	बादर – पर्याप्त – साधारण
18	बादर – पर्याप्त – प्रत्येक – एकेंद्रिय – आतप – स्थावर
19	द्वीन्द्रिय जाति – पर्याप्त
20	त्रीन्द्रिय जाति– पर्याप्त
21	चतुरिन्द्रिय जाति – पर्याप्त
22	असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति – पर्याप्त

www.JainKosh.org

तिरियदुगुज्जोवे वि य, णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए ।
हुंडासंपत्ते वि य, णउंसए वाम-खीलीए ॥13॥

- अन्वयार्थ : (तिरियदुगुज्जोवे वि य) तिर्यंचद्विक और उद्योत, (णीचे) नीचगोत्र, (अपसत्थगमण दुभगतिए) अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भगत्रिक (हुंडासंपत्ते वि य) हुंडक संस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, (णउंसए) नपुंसकवेद (वाम-खीलीए) वामन संस्थान और कीलित संहनन - इस प्रकार क्रमशः 6 व्युच्छित्ति स्थान हैं ॥13॥

www.JainKosh.org

34 प्रकृति बंधापसरण

क्र.	प्रकृति
23	तिर्यंच गति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, उद्योत
24	नीच गोत्र
25	अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय
26	हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन
27	नपुंसक वेद
28	वामन संस्थान, कीलित संहनन

खुज्जद्धं णाराए, इत्थीवेदे य सादिणाराए ।
णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवज्जे ॥14॥

- अन्वयार्थ :- (खुज्जद्धं णाराए) कुब्जक संस्थान-अर्द्धनाराच संहनन, (इत्थीवेदे य) स्त्रीवेद, (सादिणाराए) स्वाति संस्थान व नाराच संहनन, (णग्गोधवज्जणाराए) न्यग्रोध संस्थान व वज्रनाराच संहनन (मणुओराल दुग-वज्जे) मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक व वज्रवृषभनाराच संहनन — इस प्रकार 5 व्युच्छित्ति स्थान हैं ॥14॥

www.JainKosh.org

34 प्रकृति बंधापसरण

क्र.	प्रकृति
29	कुब्जक संस्थान, अर्धनाराच संहनन
30	स्त्रीवेद
31	स्वाति संस्थान, नाराच संहनन
32	न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, वज्र नाराच संहनन
33	मनुष्य गति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन

www.JainKosh.org

अथिरअसुभजस-अरदी, सोय-असादे य होंति चोत्तीसा ।
बंधोसरणट्ठाणा, भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥15॥

- अन्वयार्थ :- (अथिरअसुभजस अरदी सोय असादे य) अस्थिर, अशुभ, अयश, अरति, शोक, असाता – यह चौंतीसवाँ स्थान है ।
- इस प्रकार (चोत्तीसा बंधोसरणट्ठाणा) चौंतीस बंधापसरण स्थान (भव्वाभव्वेसु) भव्य और अभव्यों में (सामण्णा) सामान्यरूप से (दोनों को) (होंति) होते हैं ॥15॥

34वां स्थान – अस्थिर, अशुभ, अरति, शोक, असाता, अयश

www.JainKosh.org

प्रकृति बंधापसरण - विशेष

जो प्रकृतियाँ अशुभतम हैं, उनका अपसरण पहले किया है, अशुभतर प्रकृतियों का अपसरण उसके बाद किया है । यथा नपुंसक वेद के बाद स्त्री वेद का अपसरण किया है क्योंकि नपुंसकवेद अशुभतम है ।

जो प्रथम गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक की बंध-व्युच्छित्ति की प्रकृतियाँ हैं, वे ही यहाँ बंधापसरण में ग्रहण की हैं । मात्र ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थान में अपसरण नहीं होने से उन्हें नहीं लिया है ।

ये 34 बंधापसरण भव्य-अभव्य दोनों को होते हैं । (अन्य मत के अनुसार ये बंधापसरण भव्य को ही संभव हैं, अभव्य को इतनी विशुद्धियाँ नहीं पायी जाती ।)

इन-इन प्रकृतियों का बंधापसरण होने पर शेष बंध-योग्य प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि जीव यथायोग्य बंध करता है ।

णरतिरियाणं ओघो, भवणतिसोहम्मजुगलए विदियं । तदियं अट्ठारसमं, तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ॥16॥

- अन्वयार्थ :- (णर-तिरियाणं) मनुष्य व तिर्यंचों के (ओघो) ओघ के समान अर्थात् चौंतीस बन्धापसरण स्थान होते हैं ।
- (भवणतिसोहम्मजुगलए) भवनत्रिक और सौधर्म युगल में (विदियं) दूसरा (तदियं) तीसरा, (अट्ठारसमं) अठारहवाँ, (तेवीसदिमादि दसपदं) तेवीसवें स्थान से लेकर दस स्थान और (चरिमं) अंतिम स्थान होता है ॥16॥

www.JainKosh.org

किस-किस गति में कौन-कौन से प्रकृति बंधापसरण होते हैं?

गति	पाये जाने वाले अपसरण
मनुष्य, तिर्यंच गति	सारे पाये जाते हैं । 1-34
देव गति—भवनत्रिक, सौधर्म-2	2, 3, 18, 23-32, 34

जिस गति में जिस प्रकृति का बंध संभव है, उस गति में उसी प्रकृति का बंधापसरण संभव है ।

जिस गति में जो प्रकृति पहले से ही बंध-योग्य नहीं है, उस गति में वह प्रकृति; बंधापसरण के भी योग्य नहीं है ।

मनुष्य, तिर्यंच गति में ये सारी प्रकृतियाँ बंध-योग्य हैं, इसलिए यहाँ सारे बंधापसरण पाये जाते हैं।

देवगति में अप्राप्त बंधापसरण

देवगति में इन प्रकृतियों का बंध ही नहीं है ।

अतः इनका बंधापसरण भी नहीं है।

बंधापसरण क्र.	प्रकृति
1	नरकायु
4	देवायु
5	नरक-2
6-9, 15-17	सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण
10-14, 19-22	विकलत्रय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त

प्रश्न – देव गति में 33वां बंधापसरण क्यों नहीं कहा है?

उत्तर—यद्यपि 33वें बंधापसरण में कही गयी प्रकृतियों का बंध देवगति में संभव है,

तदपि देवगति में उनका बंधापसरण संभव नहीं है ।

क्योंकि देवगति में दो गतियाँ बंध-योग्य हैं—तिर्यंचगति और मनुष्यगति ।

इनमें से प्रायोग्य लब्धि में तिर्यंचगति का अपसरण 23वें अपसरण में हो गया ।

तब वहाँ एक मनुष्यगति ही बंध-योग्य बची ।

यह नियम है कि एक गति का बंध तो होता ही है ।

इसलिए शेष बची मनुष्यगति वाले स्थान का बंधापसरण संभव नहीं है ।

प्रकृति बंधापसरण में आयी प्रकृतियों की संख्या

बंधापसरण क्र.	प्रकृति संख्या	प्रकृति नाम
1	1	नरकायु
2	1	तिर्यंचायु
3	1	मनुष्यायु
4	1	देवायु
5	2	नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी
14	1	अपर्याप्त
15	1	सूक्ष्म
17	2	साधारण, अपर्याप्त
18	3	एकेन्द्रिय, आतप, स्थावर
19	1	द्वीन्द्रिय जाति
20	1	त्रीन्द्रिय जाति
21	1	चतुरिन्द्रिय जाति
23	3	वहाँ की सारी

बंधापसरण क्र.	प्रकृति संख्या	प्रकृति नाम
24	1	वहाँ की सारी
25	4	वहाँ की सारी
26	2	वहाँ की सारी
27	1	वहाँ की सारी
28	2	वहाँ की सारी
29	2	वहाँ की सारी
30	1	वहाँ की सारी
31	2	वहाँ की सारी
32	2	वहाँ की सारी
33	5	वहाँ की सारी
34	6	वहाँ की सारी
कुल	46	

www.JainKosh.org

देवगति में प्रकृति-बंधापसरण के बाद बंध-योग्य प्रकृतियाँ

देवगति में भवन-3 और सौधर्म-2 को मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध-योग्य प्रकृतियाँ 103 हैं ।

उनमें से प्रकृति बंधापसरण होने पर 31 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति होती है ।

तब शेष 103 – 31 = 72 प्रकृतियाँ बंध-योग्य रहती हैं ।

www.JainKosh.org

ते चेव चोद्दसपदा, अट्ठारसमेण हीणया होंति।
रयणादिपुढविछक्के, सणक्कुमारादिदसकप्पे ॥17॥

- अन्वयार्थ :-(रयणादिपुढविछक्के) रत्नप्रभादि छह नरक पृथिवियों में और (सणक्कुमारादिदसकप्पे) सानत्कुमारादि दस स्वर्गों में (अट्ठारसमेण हीणया) अठारहवें स्थान से रहित (ते चेव चोद्दसपदा) वे ही अर्थात् सौधर्म युगल में पाये जाने वाले चौदह स्थान (होंति) होते हैं ॥17॥

www.JainKosh.org

नरकगति में प्रकृति-बंधापसरण

1-6 नरक में तथा 3-12 स्वर्ग तक संभव बंधापसरण = सौधर्म-2 के बंधापसरण – 18वां बंधापसरण

अर्थात् 12 बंधापसरण होते हैं ।

18वां अपसरण स्थान एकेंद्रिय जाति से संबंधित है । नरकों में तथा तीसरे आदि स्वर्गों में एकेंद्रिय का बंध होता ही नहीं है । इसलिए 18वां अपसरण वहाँ संभव नहीं है ।

18वे स्थान संबंधी 3 प्रकृतियों के कम करने पर 31 – 3 = 28 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति नरकादि में होती है ।

1-6 नरक में
तथा 3-12 स्वर्ग
में
प्रकृति-बंधापसरण
के बाद बंध-योग्य
प्रकृतियाँ

नरकादि में बंध-योग्य प्रकृतियाँ

100

13 प्रकृति-बंधापसरणों की प्रकृतियाँ

– 28

अपसरण हो जाने पर बंध-योग्य प्रकृतियाँ

= 72

www.JainKosh.org

ते तेरस विदिएण य, तेवीसदिमेण चावि परिहीणा ।
आणदकप्पादुवरिम-गेवेज्जंतोत्ति ओसरणा ॥18॥

- अन्वयार्थः- (आणद-कप्पादुवरिमगेवेज्जंतोत्ति) आनत कल्प से उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त (विदिएण य) दूसरे और (तेवीसदिमेण चावि) तेवीसवें स्थान से (परिहीणा) हीन (ते तेरस) वे ही पूर्वोक्त तेरह (ओसरणा) बंधापसरण स्थान होते हैं ॥18॥

आनत से 9 ग्रैवेयक में संभव बंधापसरण

12वें स्वर्ग के बंधापसरण – 2रा, 23वां बंधापसरण

याने 3, 24-32, 34 बंधापसरण होते हैं ।

याने 11 बंधापसरण होते हैं ।

आनत आदि में तिर्यंच गति का बंध नहीं होता है ।
इसलिए तत्संबंधी अपसरण भी नहीं होते हैं ।

कम किये दो अपसरणों की चार प्रकृतियाँ हैं ।

इन 4 प्रकृतियों के कम करने पर 28 – 4 = 24 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति आनत आदि में होती है ।

आनत से 9 ग्रैवेयक में प्रकृति-बंधापसरण के बाद बंध-योग्य प्रकृतियाँ

आनत आदि में बंध-योग्य प्रकृतियाँ

96

11 प्रकृति-बंधापसरणों की प्रकृतियाँ

– 24

अपसरण हो जाने पर बंध-योग्य प्रकृतियाँ

= 72

www.JainKosh.org

ते चेवेक्कारपदा, तदिऊणा विदियठाणसंजुत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा, सत्तमपुढविम्हि ओसरणा ॥19॥

- अन्वयार्थः- (सत्तमपुढविम्हि) सातवीं पृथ्वी में (तदिऊणा) तीसरे स्थान से कम और (विदियठाणसंजुत्ता) दूसरे स्थान से युक्त (चउवीसदिमेणूणा) चौवीसवें स्थान से रहित (ते चेवेक्कारपदा) पूर्व गाथा में कहे गए ग्यारह (ओसरणा) बंधापसरण स्थान हैं । (अर्थात् कुल दस स्थान हैं ।) ॥19॥

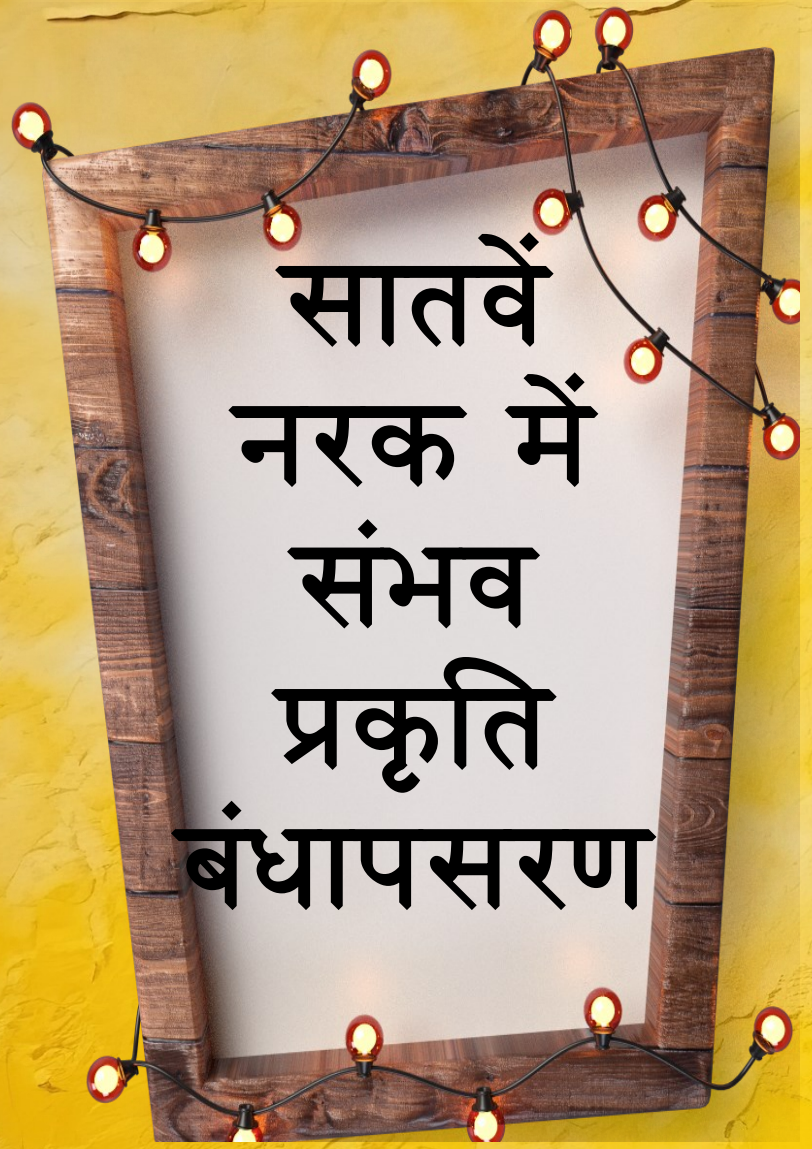

सातवें नरक में संभव प्रकृति बंधापसरण

ग्रैवेयक के बंधापसरण – 3रा, 24वां बंधापसरण + 2रा बंधापसरण

अर्थात् 2, 25-32, 34 – ये 10 बंधापसरण स्थान हैं ।

2 प्रकृति (मनुष्य आयु, नीच गोत्र) कम करने और एक प्रकृति (तिर्यंच आयु) जोड़ने से कुल एक प्रकृति पूर्व से कम हुई ।

इस 1 प्रकृति के कम करने पर 24 – 1 = 23 प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति सातवे नरक में होती है ।

सातवे नरक में प्रकृति-बंधापसरण के बाद बंध-योग्य प्रकृतियाँ

सातवे नरक में बंध-योग्य प्रकृतियाँ

96

10 प्रकृति-बंधापसरणों की प्रकृतियाँ

– 23

अपसरण हो जाने पर बंध-योग्य प्रकृतियाँ

= 73

अथवा उद्योत का बंध नहीं करने पर बंध-योग्य प्रकृतियाँ

73 – 1 = 72

www.JainKosh.org

सातवें नरक में 10 ही बंधापसरण कैसे?

सातवें नरक में उच्च गोत्र का बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं होता है, नीच गोत्र का ही बंध होता है । यह नियम है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में एक गोत्र प्रकृति का बंध होता ही है । इसलिए नीच गोत्र की व्युच्छित्ति प्रायोग्य लब्धि में संभव नहीं है ।

इसी प्रकार से तिर्यंच गति-2 के लिए भी जानना चाहिए । सातवें नरक में मनुष्य-2 का बंध सम्यक्त्व होने पर संभव है । मिथ्यात्व गुणस्थान में तिर्यंच गति का ही बंध होता है । इसलिए तिर्यंच गति का बंधापसरण यहाँ नहीं किया है ।

उद्योत वैकल्पिक प्रकृति है । उसका बंध होने पर 73 प्रकृतियाँ और बंध नहीं होने पर 72 प्रकृतियाँ बंध-योग्य रहती हैं ।

घादिति सादं मिच्छं, कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं ।
अपमत्तडवीसुच्चं, बंधंति विसुद्धणरतिरिया ॥20॥

- अन्वयार्थः (विसुद्धणरतिरिया) विशुद्ध मनुष्य व तिर्यंच (प्रायोग्यलब्धि में स्थित मिथ्यादृष्टि) (घादिति) ज्ञानावरणादि तीन घातिया कर्म, (सादं) साता वेदनीय, (मिच्छं) मिथ्यात्व (कसायपुंहस्सरदि) कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति (भयस्स दुगं) भयद्विक (भय, जुगुप्सा) (अपमत्तडवीसुच्चं) अप्रमत्त गुणस्थान में बंध-योग्य 28 नामकर्म की प्रकृतियाँ और उच्च गोत्र – इन प्रकृतियों को (बंधंति) बांधता है ॥20॥

www.JainKosh.org

प्रकृति बंधापसरण के पश्चात् मनुष्य तिर्यंच के बंध-योग्य प्रकृतियाँ

घातिया की 38 ध्रुवबंधी	38
• ज्ञानावरण	5
• दर्शनावरण	9
• मोहनीय	19
• अंतराय	5

नोकषाय	3
• पुरुषवेद	1
• हास्य-2	2

नामकर्म	28
• अप्रमत्तसंयत के बंध-योग्य	

उच्च गोत्र	1

साता वेदनीय	1

कुल	71

www.JainKosh.org

देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं ।
सग्गमणं पंचिंदी, थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥21॥

• अन्वयार्थः- (देवतसवण्णअगुरुचउक्क) देव-चतुष्क, त्रस-चतुष्क, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क, (समचउरतेजकम्मइयं) समचतुरस्र संस्थान, तैजस व कार्मण शरीर (सग्गमणं) प्रशस्त विहायोगति, (पंचिंदी) पंचेन्द्रिय जाति (थिरादिछण्णिमिणं) स्थिरादि 6 प्रकृतियाँ और निर्माण – ये (अडवीसं) अठ्ठाईस प्रकृतियाँ हैं ॥21॥

www.JainKosh.org

अप्रमत्त संबंधी 28 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

देव-चतुष्क	• देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग
त्रस-चतुष्क	• त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक
अगुरुलघु-चतुष्क	• अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास
वर्ण-चतुष्क	• वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श
स्थिरादि 6	• स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति
अन्य 6	• समचतुरस्र संस्थान, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति और निर्माण

अप्रमत्त गुणस्थान की नामकर्म की बंध-योग्य में से 3 कम क्यों?

यद्यपि अप्रमत्त गुणस्थान में नामकर्म की 31 प्रकृतियाँ बंध-योग्य हैं ।

परंतु उनमें से आहारक-2 और तीर्थंकर प्रकृति का बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में संभव नहीं है ।

अतः शेष 28 प्रकृतियाँ यहाँ कही हैं ।

तं सुरचउक्कहीणं, णरचउ-वज्जजुद पयडिपरिमाणं ।
सुरछप्पुढवीमिच्छा, सिद्धोसरणा हु बंधंति ॥22॥

• अन्वयार्थः- (सिद्धोसरणा सुरछप्पुढवीमिच्छा) बन्धापसरण पूर्ण किये हुए देव और प्रथमादि छह पृथ्वियों के नारकी मिथ्यादृष्टि (तं) उनमें से (पूर्वोक्त 71 प्रकृतियों में से) (सुरचउक्कहीणं) देव-चतुष्क कम करके (णरचउवज्जजुद) मनुष्य-चतुष्क और वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त (पयडिपरिमाणं) 72 प्रकृतियों का (हु बंधति) बंध करते हैं ॥22॥

www.JainKosh.org

प्रकृति बंधापसरण के पश्चात् देव-नारकी को बंध-योग्य प्रकृतियाँ

तिर्यंच व मनुष्य में बंध-योग्य प्रकृतियाँ	71
– देव-चतुष्क	– 4
=	67
+ मनुष्य-चतुष्क व वज्रवृषभनाराच संहनन	+ 5
कुल प्रकृतियाँ =	72

देव और नारकी देव-4 का बंध कभी भी नहीं करते हैं । इसलिए वे प्रकृतियाँ घटाई ।

वे मनुष्य और तिर्यंच गति का ही बंध करते हैं । उनमें से तिर्यंच गति की व्युच्छित्ति होने से शेष रही मनुष्य गति को बांधते हैं ।

इसलिए मनुष्य गति संबंधित 5 प्रकृतियों को जोड़ा है ।

तं णरदुगुच्चहीणं, तिरियदु णीचजुद पयडिपरिमाणं ।
उज्जोवेण जुदं वा, सत्तमखिदिगा हु बंधंति ॥23॥

- अन्वयार्थः (तं) उनमें से (पूर्वोक्त 72 प्रकृतियों में से) (णरदुगुच्चहीणं) मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र कम करके (तिरियदु णीचजुद) तिर्यंचद्विक व नीचगोत्र मिलाने पर (पयडिपरिमाणं) 72 प्रकृतियाँ होती हैं ।
- वे 72 प्रकृतियाँ (वा) अथवा (उज्जोवेण जुदं) उद्योत प्रकृति से युक्त 73 प्रकृतियाँ (सत्तमखिदिगा) सातवीं पृथ्वी के नारकी मिथ्यादृष्टि (हु बंधंति) बांधते हैं ॥23॥

www.JainKosh.org

प्रकृति बंधापसरण के पश्चात् सातवीं पृथिवी के नारकी को बंध-योग्य प्रकृतियाँ

प्रथम नरक के नारकी को बंध-योग्य प्रकृतियाँ 72

– मनुष्य-द्विक और उच्चगोत्र – 3

= 69

+ तिर्यंच-द्विक और नीच गोत्र + 3

कुल प्रकृतियाँ = 72

72 + उद्योत = 73 प्रकृतियाँ

चूँकि उद्योत वैकल्पिक प्रकृति है। अतः इसका बंध होने पर 73 प्रकृतियों का बंध होता है । उद्योत का बंध नहीं होने पर 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को प्रकृतिबंध

गति	मनुष्य, तिर्यंच	देव, 1-6 नरक	सातवां नरक
प्रकृति संख्या	71	72	72, 73

www.JainKosh.org

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली (वर्तमान में आर्यिका श्री शुद्धोहंश्री माताजी)

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं लब्धिसार की प्लेलिस्ट चुनें ।